VEDIC PHILOSOPHY

REFUTATION OF THE PROBLEM OF EVIL

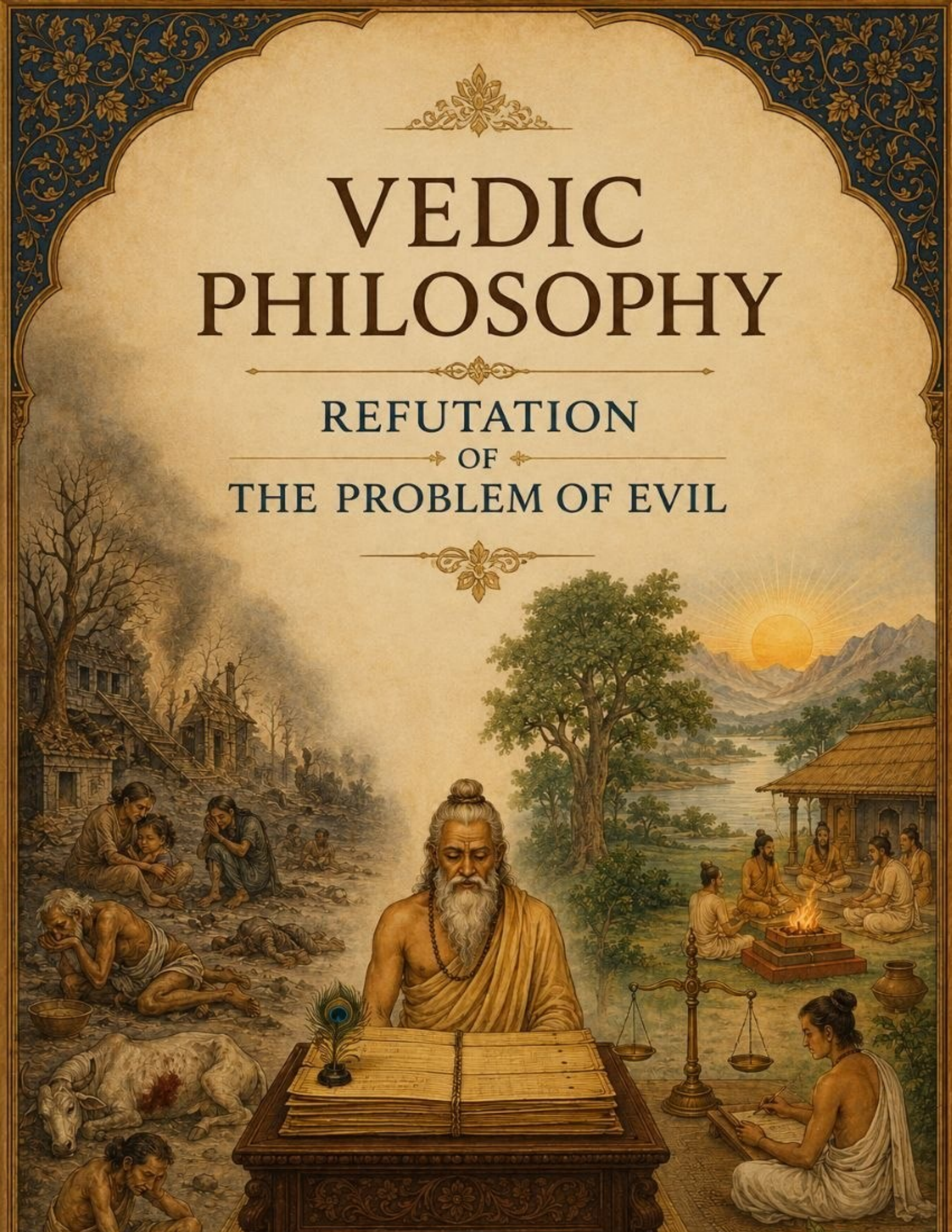

Vedic Philosophy Refutation On The Problem of Evil

लेखक-- संदीपन रॉय, निर्भय आर्य एवं सूरज आर्य

संपादक — ऋषि मन्तव्य समूह

मङ्गलाचरण

ओ३म् यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलम् तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ अथर्व० १० ।८ ।१ ॥

तीनों कालों और सब जगत् के स्वामी सुखस्वरूप परमात्मा को हम सबका नमस्कार है

भूमिका

ईश्वर एक ऐसी सत्ता है जिसमें पूरे संसार में लगभग हर दर्शन में विवाद होता आया है जिसमें आस्तिक अपने ईश्वर को और नास्तिक ईश्वर के न होने को लेकर बहस और शास्त्रार्थ करते आए हैं। नए-नए तर्कों की उन्नति हुई है। पाश्चात्य जगत में ईश्वर की अवधारणा बहुत ज़्यादा सीमित है। वहाँ ईश्वर को एक necessary being which means a being who exists in all possible worlds बोलकर prove करते हैं और उसके गुण आदि पर ज़्यादा बात भी नहीं करते। उसी जगह भारतीय दर्शन इन दोनों को स्पष्ट रूप से दिखाता है। ईश्वर के स्वरूप का विवेचन करते हुए योगसूत्रकार ऋषि पतञ्जलि लिखते हैं—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।~यो० द० १/२४

अर्थात् अविद्या आदि पाँच क्लेश शुभाशुभ मिश्रित कर्म कर्मों के फल सुखदुःख और कर्मफल के भोगों से उत्पन्न होनेवाली वासनाओं से जो पृथक् है वह पुरुषविशेष 'ईश्वर' है।

इसी पुरुषविशेष की विशेषता का कथन करते हुए ऋषि वात्स्यायन अपने न्यायसूत्र के भाष्य में लिखते हैं—

गुणविशिष्टमात्मान्तरम् ईश्वरः तस्यात्मकल्पात्कल्पान्तरानुपपत्तिः
अधर्ममिथ्याज्ञानप्रमादहान्या धर्मज्ञानसमाधिसम्पदा च
विशिष्टमात्मान्तरमीश्वरः तस्य च
धर्मसमाधिफलमणिमाद्यष्टविधमैश्वर्यम्।~न्याय ४.१.२१

अर्थात् जो आत्मा गुणों से विशिष्ट है वही ईश्वर कहलाता है। उसके आत्मा के समान होने से उसके लिये दूसरे आत्मा की कल्पना करना सम्भव नहीं है। अधर्म मिथ्याज्ञान और प्रमाद का नाश होने तथा धर्म ज्ञान और समाधि की सम्पत्ति से जो अन्य आत्मा विशिष्ट है वह ईश्वर है। और उस ईश्वर का धर्म तथा समाधि से उत्पन्न फल अणिमा आदि आठ प्रकार का ऐश्वर्य है।

अतः ऐसा ईश्वर का स्वरूप वैदिक साहित्य एवं ऋषि सिद्धान्त में माना जाता है।

इसमें एक प्रमुख प्रश्न उठता है। अगर ईश्वर सर्वशक्तिमान है तो वह पाप होने से पहले क्यों नहीं रोकता? या फिर पाप होते समय क्यों नहीं रोकता? क्या वह मनुष्यों के साथ अन्याय होते हुए देखकर खुशी होता है? ऐसे प्रश्नों को पाश्चात्य जगत में the problem of evil कहा जाता है। इस पुस्तक में ऐसे प्रश्नों का समाधान किया जाएगा। अतः इस पुस्तक को लिखने का यही उद्देश्य है।

एक मुख्य बात जो गौर करने की है वह यह है कि नास्तिक सर्वदा ऐसे प्रश्नों को पूछने का जो मुख्य आधार ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता होती है। नास्तिक इसका तात्पर्य यह लेते हैं कि ईश्वर सब कुछ कर सकता है तो पाप भी रोक सकता है। ईश्वर पाप क्यों नहीं रोकता यह आगे बताया जाएगा। लेकिन मुख्य बात है कि क्या ईश्वर सब कुछ कर सकता है ऐसा मानना सही है? उत्तर है नहीं क्योंकि ईश्वर सब कुछ कर सकता है ऐसा सम्भव नहीं है। जैसे खुद से अच्छा ईश्वर नहीं बना सकता।

फिर प्रश्न उठता है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान क्यों है?

इसका उत्तर है—

सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः।

जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करता अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरा करता है इसलिए उस परमात्मा का नाम 'सर्वशक्तिमान्' है।

अतः यह कहना कि ईश्वर सब कुछ कर सकता है निरर्थक है। वैदिक सिद्धान्तों में चमत्कार बोलकर कुछ नहीं माना जाता जैसे क़ुरआन बाइबल जैसे ग्रन्थों में माना जाता है। वैदिक सिद्धान्त सर्वदा तर्क युक्ति प्रमाण और विज्ञान आधारित होता है। हमारा सिद्धान्त ऐसा नहीं है जैसे क़ुरआन में अल्लाह ने बोला कुन फ़यकून और अभाव से भाव की उत्पत्ति हो गई। या फिर बाइबल में जो God है जिसने बोला लेट देयर बी लाइट और अभाव से रोशनी आ गई। ऐसे अतार्किक सिद्धान्तों के साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

अपने ज़्यादातर कथनों को स्पष्ट करते हुए अब हम विद्यार्थी एवं बालकों के सुखबोध के लिए इस पुस्तक का आरम्भ करते हैं।

पूर्वपक्ष: यदि ईश्वर भविष्य को जानता है, तो वह भविष्य की घटनाओं को पूर्व ही जानता है तो जानबूझकर भी उसको रोकता क्यों नहीं है?

उत्तरपक्ष: पूर्वपक्ष का मूल आधार ही विचारणीय है कि "**ईश्वर भविष्य की घटनाओं को उसी प्रकार जानता है जैसे वर्तमान और भूत की घटनाओं को जानता है।**" यदि भविष्य में अभी कोई घटना वस्तुतः घटित ही नहीं हुई है, तो उसे वर्तमान में उसी रूप में **यथार्थतः विद्यमान जानना संभव नहीं** है। यदि ईश्वर किसी अयथार्थ को यथार्थ के रूप में जाने, तो उसके ज्ञान में मिथ्यात्व का दोष उत्पन्न होगा। दूसरी बात ईश्वर की सर्वज्ञता का हेतु उसकी सर्वव्यापकता है जब भविष्य बर्तमान में व्याप्त है ही नहीं तो ईश्वर सर्वव्यापक होकर भविष्य नहीं जान सकता। जैसे ईश्वर अपने अंत को नहीं जान सकता, गोल वस्तु की भुजा को नहीं जान सकता, क्योंकि इन सबका अस्तित्व ही नहीं है और ये अलीक पदार्थ हैं। उसी प्रकार भविष्य का अस्तित्व वर्तमान में विद्यमान न होने के कारण ईश्वर भी उसे नहीं जान सकता। इसी प्रकार भविष्य में होने वाले जीव द्वारा की जाने वाली ऐच्छिक क्रिया का अस्तित्व वर्तमान में न होने के कारण ईश्वर भी उसे नहीं जान सकता।

ईश्वर भविष्य में मनुष्यों द्वारा किए जाने वाले सभी कर्मों की संभावनाओं को जानता है। वह जानता है कि किस जीव को किस कर्म का क्या फल भविष्य में कब और कैसे देना है। कितने प्राणियों को भविष्य में जन्म देना है, यह भी वह जानता है। ये परोक्ष बातें हैं, जिन्हें जीव नहीं जानता। इन्हीं मामलों में ईश्वर को भविष्य का ज्ञाता कहा जाता है।

लेकिन जो घटना अभी घटित ही नहीं हुई है और जिसे भविष्य में जन्म लेने वाला जीव अपनी इच्छा से करेगा, उसे ईश्वर वर्तमान में जान ही नहीं सकता। इससे न तो ईश्वर पर कोई दोष आता है और न ही उसकी सर्वज्ञता खंडित होती है। अतः प्रश्न निराधार है।

पूर्वपक्ष: यदि ईश्वर पूर्णतः न्यायकारी है, तो उसने बुराई और दुःख को क्यों बनाया है?

उत्तरपक्ष: ईश्वर बुराई नहीं बनता। बुराई और अच्छाई का हेतु है जीव का अज्ञान और ज्ञान है। जीव अपने ज्ञान के कारण जो उचित कार्य करता है उसे अच्छाई कहते है और अज्ञान के कारण जो अनुचित कार्य करता है उसको बुराई कहते है। **अच्छाई बुराई जीव के स्वाभाविक गुणों का परिणाम** है। तो बुराई का हेतु जीव है।

दूसरी बात जगत के प्रकृति में रजस् और तमस् है ये भी जीव को बुराई के लिए उकसाती है। तो ईश्वर में दोष नहीं है ईश्वर से पृथक तत्वों में दोष है।

प्रश्न - जब कोई बुरा काम करता है तो ईश्वर उसके हाथ को क्यों नहीं रोकता ?

उत्तर - क्योंकि उस जीव के ऐसे कर्म है कि उसे फल रूप में कर्म स्वतंत्र शरीर मिले, तो अगर ईश्वर उसे रोकेगा या जबरदस्ती कोई कार्य करवाएगा तो ये अन्याय हो जाएगा, यानी ये ऐसा हो जाएगा कि जीव के कर्म तो थे स्वतंत्र कर्म वाला शरीर पाने के लेकिन ईश्वर उसे जबरदस्ती बंधन में कर रहा है इसलिए ये अन्याय होगा। और अगर ईश्वर की शक्ति का अभिप्राय है कि बुरे को रोके, तो यह बात बहुत दूर तक जाएगी। फिर तो अच्छाई को भी जबरदस्ती सुनिश्चित करना ईश्वर के जिम्मे होगा। ऐसा करने से जीव की स्वतंत्रता खंडित हो जाएगी। जीव एक यंत्र की भाँति जड़ हो जाएगा, जो अन्यायपूर्ण होगा और जीव के स्वाभाविक गुणों के विपरीत होने के कारण असंभव भी होगा। असम्भव को ईश्वर भी चाहे तो संभव नहीं कर सकता यही वैदिक मान्यता है।

पूर्वपक्ष: यदि ईश्वर ने बाघ और अन्य मांसाहारी जीवों को ऐसी प्रकृति के साथ बनाया है जिसमें दूसरे जीवों को मारना उनकी आवश्यकता है, तो जिन शाकाहारी जीवों का वे शिकार बनते हैं, उनके दुःख के लिए क्या ईश्वर अंततः जिम्मेदार नहीं है?

उत्तरपक्ष: ईश्वर ने जिस जीव को हिरन बनाया है ना उसके कर्म ऐसे थे कि उसे उसी योनि में दुख भोगना था इसलिए वो न्याय है। और एक बार को हम मान लेते है कि उसको बिना वजह दुख मिला, बिना किसी फल भोग के, तो भी इसका उसे कोई हरजाना नहीं मिलेगा क्योंकि इसका जिम्मेदार वो खुद है। जीव का बार बार जन्म अपने कर्म फल भोगने के लिए होता है, इस संसार में दुख का कारण है प्रकृति और जीव, जीव अपने ही कर्मों के फल स्वरुप ऐसे संसार में जन्म लेता है जिसमे दुख है तो फिर ईश्वर की क्या गलती, और ईश्वर ने तो अपनी तरफ से इस संसार में बहुत सारे सुखकारी पदार्थ बनाए है, साथ में ज्ञान भी दिया जिससे मोक्ष पाके जीव आनंद भोग सके, तो जीव तो इस कर्म फल के अनंत loop में फसा हुआ है हमेशा के लिए, इससे तो वो parmanantly निकल ही नहीं सकता, कारण ये है कि वो एकदेशी चेतन है। तो

दुख के लिए ईश्वर अनंत जिम्मेदार नहीं है बल्कि जीव का ही है जो है, ईश्वर तो उल्टा help करता है इस दुख से छूटने में।

पूर्वपक्ष: यदि ईश्वर जीव को उसके कर्मों का फल पशु-योनि (भोग योनि) में जन्म देकर देता है, तो क्या हम निर्दोष पशुओं को खलनायक समझकर उन कर्मों का परिणाम भुगतने वाला नहीं बना रहे हैं जिन्हें उन्होंने स्वयं नहीं किया? यदि ऐसा है, तो फिर गाय को मारना नैतिक रूप से गलत क्यों माना जाए?

उत्तरपक्ष: पशु वर्तमान जन्म में निर्दोष है; इसलिए ईश्वर उसे उसके पूर्वजन्म के कर्मों का बोध कराकर पीड़ा नहीं देता। यही ईश्वर की दया का प्रमाण है। यदि ईश्वर निर्दयी होता, तो वह उसे उसके पूर्वकर्मों का बोध कराकर मानसिक पीड़ा दे सकता था; परंतु ऐसा नहीं करता। उनकी सहायता हेतु दृश्य, तीव्रता , विशाल शरीर आदि गुण देता है! जो मनुष्यों में भी नहीं होता। और वो, वेद में पशुओं के प्रति अच्छा व्यवहार करने का भी निर्देश देते हैं। गोया ईश्वर बता रहा है वक मेरे दंड देने के कारण उनके साथ तुम खलनायक समझकर अत्याचार नहीं कर सकते। और मनुष्य पशु से पृथक

विचारवान है और सब कर्म धर्म अनुकूल रूप से करना उसका कर्तव्य हैं।

दूसरी बात, यदि पशु अपने पूर्वकर्मों के कारण भोग-योनि में है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसे मारना उचित हो जाता है। उदाहरणतः कोई चोर अपने अपराध के लिए 3 साल कारावास में दंडित हो रहा हो, तो क्या उसके पश्चात या दंड के दौरान उसे इस बहाने जान से मार देना वाल व्यक्ति उचित माना जाएगा केवल इसलिए कि उसको दंड मिला है? ऐसा तो लोकव्यवहार में भी नहीं होता कि न्यायाधीश दंड दे तो साधारण नागरिक भी दंड देने के अधिकारी हो जाएंगे। जैसे यह अनुचित है, वैसे ही पशु की हत्या भी अनुचित है। क्योंकि दंड का सिद्धांत न्यायानुकूलता है, न कि किसी को मनमाने ढंग से पीड़ा देना। किसी को दंड मिल रहा है इस वजह से मुझे उसे दंड देने का अधिकार है इस सिद्धांत का क्या प्रमाण हैं? ईश्वर द्वारा कर्मफल के रूप में दिया गया भोग न्यायानुकूल है और मनुष्य द्वारा किसी निर्दोष प्राणी को जानबूझकर मारना न्याय प्रतिकूल है—दोनों को एक नहीं माना जा सकता। दूसरी बात ईश्वर सर्वज्ञ है तो जानता है कि किस दंड का क्या फल मिलेगा। यदि हम यह नहीं जानते कि पशु ने पूर्वजन्म में कौन-सा कर्म किया था, तो उसके प्रति अपने कर्म को उसके पूर्वकर्म के आधार पर उचित कैसे है। और तो और

यदि ईश्वर ने किसी जीव को उसके पूर्वकर्मों का उचित दंड दे दिया है या वह दंड भोग रहा है, तो मनुष्य को उसी कर्म के आधार पर अतिरिक्त दंड देने का अधिकार नहीं है। क्योंकि ईश्वर द्वारा निर्धारित दंड के ऊपर अपनी ओर से और दंड जोड़ना, उसके भोग में अनावश्यक वृद्धि करना होगा। यह स्वयं अन्यायपूर्ण होगा। अतः पूर्वकर्म के दंड का विधान ईश्वर का विषय है मनुष्य का नहीं।

पूर्वपक्ष: यदि ईश्वर जीव के प्रत्येक कर्म का परम सहायक है, तो वह जीव को अन्यायपूर्ण या बुरे कर्म करने की अनुमति क्यों देता है, जबकि उसके पास उन्हें रोकने की शक्ति भी है और उनका ज्ञान भी?

उत्तरपक्ष: यहाँ पहले यह समझना आवश्यक है कि ईश्वर जीव के प्रत्येक कर्म में सहायक किस अर्थ में है। मनुष्य की क्रियाएँ मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं—ऐच्छिक और अनैच्छिक। ईश्वर मनुष्य की प्रत्येक क्रिया में सहायक होने का अर्थ यह है कि वह उसकी अनैच्छिक क्रियाओं में सहायक है, जैसे शरीर का संचालन, हृदय की गति, रक्त-संचालन, शरीर में परमाणुओं एवं उनके बल को धारण करना तथा पाचन आदि।इन अनैच्छिक क्रियाओं के कारण

ही मनुष्य की ऐच्छिक क्रियाएँ संभव होती हैं। परंतु ऐच्छिक कर्म का निमित्तकर्ता जीव स्वयं है, ईश्वर नहीं। इसलिए यदि कोई जीव कोई अन्यायपूर्ण या बुरा कर्म करता है, तो उसका दोष ईश्वर पर नहीं आता, क्योंकि ईश्वर उस ऐच्छिक कर्म का कर्ता या निमित्त नहीं, बल्कि केवल उन आवश्यक अनैच्छिक प्रक्रियाओं में सहायक है जिनके माध्यम से जीव अपनी इच्छा से कर्म कर सकता है। इन्हीं अनैच्छिक क्रियाओं के कारण ईश्वर मनुष्य की इच्छा के विपरीत जाकर गलत कार्य करने वाले के मन में भय, लज्जा और शंका उत्पन्न करता है। यदि ईश्वर द्वारा इन भावनाओं की उत्पत्ति बुरे कर्मों को रोकने के लिए होती है, तो इसमें ईश्वर दोषी कैसे हुआ? इसके विपरीत, वह तो बुराई को रोकने वाला और जीव को अधर्म से बचाने वाला हुआ।

पूर्वपक्ष: यदि पुनर्जन्म और कर्म-सिद्धांत सही है, तो क्या किसी मनुष्य का अंधा, लंगड़ा, गरीब या किसी अन्य प्रकार से दुःखी होना उसके पिछले जन्म के कर्मों का परिणाम है, तो क्या ऐसी अवस्था के लिए ईश्वर को दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए? और यदि कोई व्यक्ति अपने पिछले कर्मों का फल स्वयं भोग रहा है, तो फिर दूसरों को उसकी सहायता क्यों करनी चाहिए?

उत्तरपक्ष: सर्वप्रथम यहाँ यह समझना होगा कि आर्य समाज के कर्म-सिद्धांत के अनुसार यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक दुःख या शारीरिक कमी को निश्चित रूप से पिछले जन्म के कर्मों का फल ही माना जाए। परंतु तर्क के लिए यदि यह मान भी लिया जाए कि किसी व्यक्ति का अंधत्व, अपंगता, बीमारी, गरीबी या अन्य दुःख उसके पूर्वकर्मों का फल है, तो भी इससे आगे के दोनों निष्कर्ष स्वतः सिद्ध नहीं होते।

क्योंकि यदि किसी व्यक्ति की दुःखद अवस्था को उसके पूर्वकर्म का फल माना जाए तो केवल दुःख को ही कर्मफल मानना एकपक्षीय दृष्टि होगी। यदि कर्मफल-व्यवस्था के अनुसार व्यक्ति को दुःख भोगना है, तो उसी कर्मफल की व्यापक व्यवस्था में यह भी हो सकता है कि उसे उचित समय पर चिकित्सक, औषधि, परिवार, मित्र या किसी अन्य व्यक्ति की सहायता प्राप्त हो। यानी उसके दुःख को दूर करने वाली सहायता भी उसके कर्मफल के विरुद्ध हो ये सिद्धांत ही सिद्ध नहीं। और हो सकता है कि प्रश्नकर्ता द्वारा की गई सहायता भी ईश्वर की कर्मफल-व्यवस्था का ही एक साधन हो सकती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति की बीमारी को

कर्मफल माना जाता है, तो यह भी संभव है कि उसे उचित चिकित्सक मिलना, उपचार उपलब्ध होना और उसके परिवार या मित्रों द्वारा सहायता मिलना भी उसके कर्मानुसार प्राप्त पुण्यका भाग हो।

इसलिए यह कहना कि "ईश्वर ने उसे उसके कर्मों का फल दिया है, अतः उसकी सहायता करना ईश्वर के निर्णय में हस्तक्षेप होगा" एक अनावश्यक अनुमान है। पहले यह सिद्ध करना होगा कि ईश्वर का निर्णय क्या है? साथ ही साथ निर्दयता का दोष लगाने के लिए पूर्वपक्ष को पता होना चाहिए कि ईश्वर ने उसे वह पीड़ा क्यों दी और क्या उसने यह भी निर्धारित किया हो कि कोई दूसरा व्यक्ति उसकी सहायता न करे? क्योंकि हो सकता है कि आपका उसको सहायता मिलना भी उसके किसी पुण्य कर्म का हिस्सा हो। तो ऐसे तुक्के मारकर corrolaries बनाये तो ये भी एक संभावना हो सकती है ऐसे में आपको तो उसके पुण्य में सहायक बनना चाहिए। इससे आपको भी पुण्य मिलेगा और उसके पुण्य में आप निमित्त बनेंगे। अतः मदद करने में कोई दोष नहीं।केवल उसके दुःख को कर्मफल मान लेने से ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकलता। जैसे, मान लीजिए कोर्ट ने किसी व्यक्ति को जेल की सजा दी। अब वह बीमार

हो जाए, तो क्या इसलिए कि वह जेल में सजा भुगत रहा है, उसका उपचार ही नहीं होगा? या वह जेल से नियत समय से पहले निकलने के लिए न्याय-व्यवस्था का सहारा ही नहीं ले सकता?
तो किसी को दंड मिलेगा तो हम सहायता नहीं कर सकते ये सिद्धांत ही ग़लत है।

पूर्वपक्ष: बलात्कारी बलात्कार करता है, हत्यारा हत्या करता है—तो क्या यह भी कर्मफल नहीं है? क्योंकि ईश्वर ही जीव को जाति, आयु और भोग प्रदान करने वाला है।

उत्तर: पूर्वपक्ष की यह धारणा सही नहीं है कि जीवन में घटने वाली प्रत्येक घटना पूर्वकर्म का फल होती है। कर्मफल का सिद्धांत यह है कि जीव को उसके कर्मों के अनुसार सुख-दुःख का फल अवश्य मिलता है, लेकिन हर घटना को कर्मफल मानना आवश्यक नहीं। जैसे, उत्तर प्रदेश में रहने वाला व्यक्ति भारत में रहता है लेकिन भारत में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति उत्तर प्रदेश में रहता है यह आवश्यक नहीं। इसी प्रकार, जो कुछ कर्म का फल है वह जीव को सुख दुख के रूप में मिलती है, लेकिन जीव का प्रत्येक सुख दुख कर्म का फल ही हो यह आवश्यक नहीं नहीं।

अब कर्म से उत्पन्न होने वाले सुख दुख को तीन स्तरों पर समझें:

1.कर्म का फल-- ईश्वर जीव के कर्मों के अनुसार न्यायपूर्वक सुख-दुःख प्रदान करता है। लेकिन किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा किया गया अन्याय, जैसे हत्या या बलात्कार, स्वयं ईश्वर द्वारा दिया गया कर्मफल नहीं है।

2. कर्म का परिणाम-- किसी कर्म का प्रत्यक्ष परिणाम। जैसे किसी व्यक्ति द्वारा की गई दुर्घटना में दूसरे व्यक्ति की मृत्यु उस कर्म का परिणाम है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मृत व्यक्ति अपने पूर्वकर्म का फल ही भोग रहा था।

3. कर्म का प्रभाव-- किसी घटना से परिवार और समाज पर पड़ने वाला प्रभाव। जैसे मृत्यु से उसके परिजनों को होने वाला दुःख उस घटना का प्रभाव है, जिसे सीधे पूर्वकर्म का फल नहीं कहा जा सकता।

अतः कर्मफल कर्म का परिणाम और कर्म का प्रभाव--तीनों को एक मानना ग़लत है।

इसी प्रकार, बलात्कारी बलात्कार करता है और हत्यारा हत्या करता है तो उनके कर्मों का फल उन्हें अवश्य मिलेगा। लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि पीड़ित व्यक्ति उसी घटना के रूप में अपने पूर्वकर्म का फल भोग रहा था। अपराधी का अपराध उसका कर्म है और पीड़ित के साथ हुआ अन्याय उस कर्म का परिणाम है।
यदि हर पीड़ा को पूर्वकर्म का फल मान लिया जाए, तो अन्याय को अन्याय कहा ही नहीं जाएगा। तो ऐसे में अत्याचारियों को वेद दंड का विधान ही न देता। वेद का सिद्धांत तो यह है कि अपराधी को उसके अपराध का दण्ड मिले और पीड़ित के साथ हुए अन्याय की न्यायपूर्ण व्यवस्था हो।

अतः ईश्वर का जाति, आयु और भोग का दाता होना अलग बात है; जीवन की प्रत्येक घटना को पूर्वकर्म का फल मानना अलग बात है। पहली बात से दूसरी बात स्वतः सिद्ध नहीं होती।
रही बात कि मनुष्य को यह ज्ञान क्यों नहीं होता कि उसके जीवन की कौन-सी घटना किस पूर्वकर्म का फल है, तो इसका उत्तर यह

है कि अनेक जन्मों की स्मृतियाँ और पुराने संबंध वर्तमान जीवन में गंभीर अव्यवस्था उत्पन्न कर सकते हैं।
पूर्व जन्म के कर्म का फल भोगने वाला व्यक्ति ग्लानि में पूरे जीवन को कोसता रहेगा और अपने पूर्वकर्म के बारे में सोचता रहेगा। वह अपने पूर्व जन्म के बुरे कर्मों को सुधारने के प्रयास में इस जन्म के कर्तव्यों को भी त्याग सकता है और पूर्व की घटनाओं को ठीक करने का प्रयास कर सकता है। इससे समाज में बहुत अव्यवस्था फैल सकती है। और दूसरी बात इससे उसको सुधारने का मौका भी मिलता है बिना मानसिक दबाव के।

रही बात आयु की, तो आर्यों के आयु से आशय केवल एक निश्चित और अपरिवर्तनीय जीवन-अवधि नहीं है कि कि किसी की हत्या और दुर्घटना से प्राप्त मृत्यु के काल तक की जीवन अवधि को आयु कहेंगे। आयु का तात्पर्य शरीर के स्वास्थ्य, रोग-प्रतिरोधक क्षमता और जीवन-धारण की क्षमता से सम्बन्ध है ये कोई निश्चित अवधि

निर्धारित समय नहीं है और इसे वर्तमान जन्म के कर्मों से प्रभावित किया जा सकता है। सरल शब्दों में, आयु का अर्थ शरीर की प्राकृतिक जीवन-सीमा और उसकी जीवन-धारण क्षमता से है—अर्थात शरीर की निर्धारित शारीरिक संरचना, स्वास्थ्य, रोग-प्रतिरोधक क्षमता आदि के आधार पर वह शरीर कितने समय तक जीवन धारण करने में सक्षम है। मनुष्य अच्छे आहार-विहार, चिकित्सा और संयम आदि से अपनी जीवन-क्षमता को बढ़ा सकता है, जबकि कुपोषण और असंयम उसे घटा सकते हैं।

पूर्वपक्ष: दुनिया में किसी भी दंड को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि दंड देने वाले को पता होता है कि दोषी को किस अपराध के लिए दंड दिया जा रहा है। ईश्वर की न्याय-व्यवस्था में ऐसा दिखाई नहीं देता। इसलिए यह अन्यायपूर्ण है।

उत्तरपक्ष: पहले तो यह सिद्ध करना होगा कि न्याय तभी संभव है, जब दोषी को दंड के बारे में पहले से जानकारी देकर ही दंड दिया जाए। यदि लोक-व्यवहार को आधार मानें, तो भी यह सिद्ध नहीं हो पाएगा। उदाहरण के लिए, किसी आतंकवादी को दंड देने से पहले यह नहीं बताया जाता कि "आज मैं तुम्हें मारने आ रहा हूँ।"

इसी प्रकार युद्ध में सेना का जवान भी शत्रु को पहले से यह सूचना नहीं देता कि "मैं तुम्हें मारने वाला हूँ।" अतः नास्तिकों के द्वारा मान्य लोक-व्यवहार से भी यह सिद्ध नहीं होता कि दंड देने से पहले दंड के कारण की जानकारी देना अनिवार्य है।

दूसरी बात, मान लेते हैं कि ईश्वर स्वाभाविक ज्ञान के रूप में व्यक्ति को यह जानकारी दे दे कि "तू पिछले जन्म में बलात्कारी था।" तब वह व्यक्ति इस जीवन में निरंतर ग्लानि और मानसिक तनाव में जी सकता है। यदि इस जन्म में उसे अच्छे संस्कार प्राप्त हुए हैं, तो वह यह सोचकर अत्यधिक पश्चात्ताप में डूब सकता है कि "मैंने ऐसा घोर अपराध कैसे किया?" यहाँ तक कि आत्महत्या करने या मानसिक तनाव में रहने की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है। और यदि इस जन्म में उसके संस्कार पहले से ही बुरे हैं तथा वह तामसिक प्रवृत्तियों से युक्त है, तो वह अपने पूर्वकर्मों के इस ज्ञान के आधार पर और अधिक विध्वंसकारी बन सकता है। दोनों ही परिस्थितियों में सामाजिक व्यवस्था प्रभावित होने की संभावना है।

इसी प्रकार, यदि प्रत्येक जीव को अपने पूर्वजन्म की सभी बातें बता दी जाएँ, तो अनेक प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है। कोई

गाय अपने पूर्वजन्म के माता-पिता को जानकर उनके घर पहुँच जाए, लेकिन वे उसे पहचान न पाएँ और उसे वहाँ से भगा दें। कोई मनुष्य यह जान जाए कि वह पिछले जन्म में सूअर था, तो संभव है कि वह यह सोचकर भोजन तक न कर पाए कि "मैं तो पिछले जन्म में यह खाता था।" ऐसी अनेक परिस्थितियाँ अनावश्यक मानसिक और सामाजिक अव्यवस्था का कारण बन सकती हैं।

इसलिए यह कहना अधिक उचित है कि परमात्मा जीव को उसके पूर्वजन्म के कर्मों की स्मृति सामान्यतः नहीं देता, क्योंकि वह दयालु है और न्याय भी हिकमत (उचित विवेक और उद्देश्य) के साथ करता है। दंड का उद्देश्य केवल पीड़ा देना नहीं, बल्कि न्याय की व्यवस्था बनाए रखना भी है।

और जब हमें इसी जन्म की अनेक घटनाएँ और बातें याद नहीं रहतीं, तो पिछले जन्म की घटनाओं का स्मरण स्वाभाविक रूप से कैसे संभव होगा? हाँ, योग अवस्था में व्यक्ति अपने पूर्वजन्म से संबंधित बातों को जान सकता है और इसका भी हेतु है कि योगी कभी भी इन जानकारियों से विचलित नहीं होता। इसलिए कोई अन्याय ईश्वर पर आता नहीं।

प्रश्न: यदि ईश्वर पाप को रोक सकता है तो रोकता क्यों नहीं? जैसे किसी लड़की का बलात्कार हो रहा हो और वह सहायता के लिए चिल्ला रही हो, तो ईश्वर उसे क्यों नहीं बचाता?

उत्तरपक्ष: पहले यह समझना होगा कि ईश्वर के कार्य क्या हैं। ईश्वर सृष्टि की रचना, संचालन और प्रलय करता है, जीवों को कर्मफल देता है तथा अज्ञान दूर करके मोक्ष की ओर अग्रसर करता है। ईश्वर का कार्य प्रत्येक गलत कर्म को बलपूर्वक रोक देना नहीं है।

यह प्रश्न इस धारणा पर आधारित है कि ईश्वर कुछ भी कर सकता है। हम ईश्वर की शक्ति का ऐसा अर्थ स्वीकार नहीं करते। ईश्वर अपने न्याय, स्वभाव और नियम के विरुद्ध कार्य नहीं करता। जैसे पुलिस अपराधी को गिरफ्तार करके अपराध को रोकती है, न्यायपालिका कानून के अनुसार दंड देती है और संसद कानून बनाती है—तीनों अपराध को रोकते हैं, लेकिन अपने-अपने अधिकार और नियम के अनुसार। उसी प्रकार ईश्वर भी जीव की स्वतंत्रता को नष्ट किए बिना पाप को रोकने की व्यवस्था करता है।

1.ईश्वर तीन प्रकार से पाप को रोकता है भय, लज्जा और शंका उत्पन्न करके अर्थात् गलत कार्य के विषय में विचार करते हुए मनुष्य के भीतर विवेक और नैतिक चेतना उत्पन्न करके।

2.वेद और धर्म की व्यवस्था द्वारा जिससे मनुष्य को उचित-अनुचित कर्म का ज्ञान मिले।

3.कर्मफल की व्यवस्था द्वारा अर्थात् पाप करने पर उसके दुष्परिणाम और पुण्य करने पर उसके शुभ परिणाम प्राप्त हों। इस दंड के भय और पुण्यफल की प्रेरणा से व्यक्ति गलत कार्य करने से बचता है।

फिर भी यदि कोई व्यक्ति बलात्कार या हत्या जैसा अपराध करता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि ईश्वर ने उसे रोकने की कोई व्यवस्था नहीं की। ईश्वर का उद्देश्य जीव की पाप-प्रवृत्ति को रोकना है, उसकी कर्म-स्वतंत्रता छीनना नहीं। यदि ईश्वर प्रत्येक गलत कर्म को बलपूर्वक होने से रोक दे, तो जीव की स्वतंत्रता समाप्त हो जाएगी और वह कठपुतली के समान हो जाएगा।

अतः ईश्वर पाप को रोकने की व्यवस्था करता है, लेकिन न्याय और जीव की स्वतंत्रता दोनों को बनाए रखते हुए।

ओ३म्

अगर हमारे किसी जिज्ञासु बंधु या फिर नास्तिक मत के किसी व्यक्ति को इस पुस्तक पर कोई भी प्रश्न आए तो नीचे दिए गए ईमेल पर संपर्क कर सकता है।

संदीपन रॉय-- rishimantavya@gmail.com

निर्भय आर्य-- aryanirbhay624@gmail.com

सूरज आर्य-- aryadebates@gmail.com